मङ्गलायतन

श्री आदिनाथ-कुन्दकुन्द-कहान दिगम्बर जैन ट्रस्ट, अलीगढ़ (उ.प्र.) का

मासिक मुखपत्र

वर्ष-12, अङ्क-1 जीवादि प्रयोजनभूत तत्त्व-18 (वि.नि.सं. 2538) जनवरी 2013

वार्षिक समाधि-दिवस के वैराग्य प्रसंग पर.....

गुरुदेव! तुम्हें शत्-शत् प्रणाम

तुम समयसार के स्वाध्यायी, आगम ग्रन्थों के जानकार।
निज परणति में रमनेवाले, परपरणति से ममता निवार॥

तुम विज्ञ! विवेकी! परम संत! तुम सद्गृहस्थ! सद्गुरु महान।
सत् पुरुष! सत्य अन्वेषी हो, हो तत्त्व-वेत्ता गुरु कहान!

निज उपदेशामृत पिला-पिला, मिथ्यात्व अंधेरा किया दूर।
सन्मार्ग दिखाकर मानव के, संसार-कष्ट सब किये चूर॥

हितमित प्रिय भाषी! संन्यासी! अभ्यासी अद्भुत तत्त्वज्ञान।
टोडरमलजी के अनुयायी, गुण गौरवमय गरिमा निधान॥

हे सत्यनिष्ठ! हे सौम्य मूर्ति! तुम जिनवाणी के परम भक्त।
तुमने सब कुछ कर न्योछावर, अपनाया पूर्ण दिगम्बरत्व॥

तुम अमर हो गये युग-युग तक, हे पुण्य पुरुष! हे पुण्यधाम!
अध्यात्म जगत के सहस्त्ररश्मि! गुरुदेव! तुम्हें शत्-शत् प्रणाम॥

- श्री अनूपचन्द न्यायतीर्थ, जयपुर

प्रधान सम्पादक
पण्डित कैलाशचन्द्र जैन, अलीगढ़

भूतपूर्व मुख्य सलाहकार
स्व. साहू रमेशचन्द्र जैन, नयी दिल्ली

मुख्य सलाहकार
श्री बिजेन्द्रकुमार जैन, अलीगढ़

सम्पादक मण्डल
ब्र. पण्डित ब्रजलाल शाह, वढ़वाण
बाल ब्रह्मचारी हेमन्तभाई गाँधी, सोनगढ़
डॉ. राकेश जैन शास्त्री, मङ्गलायतन वि.वि.
पण्डित देवेन्द्रकुमार जैन, मङ्गलायतन
श्रीमती बीना जैन, देहरादून

मार्गदर्शन
डॉ. किरीटभाई गोसलिया, अमेरिका
श्री लक्ष्मीचन्द बी. शाह, लन्दन
श्री पवन जैन, अलीगढ़
पण्डित अशोक लुहाड़िया, अलीगढ़

सम्पादकीय सलाहकार
पण्डित रतनचन्द भारिल्ल, जयपुर
पण्डित विमलदादा झाँझरी, उज्जैन
श्री चिरंजीलाल जैन, भावनगर
श्री प्रवीणचन्द्र पी. वोरा, देवलाली
श्री वसन्तभाई एम. दोशी, मुम्बई
श्री श्रेयस् पी. राजा, नैरोबी
श्री विजेन वी. शाह, लन्दन
पण्डित संजय जैन शास्त्री, मङ्गलायतन
पण्डित सुधीर जैन शास्त्री, मङ्गलायतन

शुल्क :
वार्षिक : 50.00 रुपये
एक प्रति : 04.00 रुपये

जीवादि प्रयोजनभूत तत्त्व विशेषाङ्क - 18

क्या / कहाँ

आत्म-अभ्युदय की.....	**3**
आचार्यदेव शिष्य.....	**5**
दुःख के कारणरूप....	**8**
ज्ञानी का उपदेश :....	**12**
परमार्थस्वरूप जीव.....	**14**
त....त्त्व....च....र्चा	**20**
अनुमोदना का उत्तम फल	**23**
समाचार-सार	**30**

अङ्क के प्रकाशन में सहयोग
श्रीमती ओखीबाई
धर्मपत्नी श्री जसराजजी हस्ते
श्री अशोककुमार जैन चिन्मय
100/5 बुल टैम्पल रोड, टेलीफोन एक्सचेंज के आगे, बैंगलोर।

पं. सं. : DELBIL/2001/4685
स्वामी, प्रकाशक एवं मुद्रक पवन जैन द्वारा मङ्गलायतन मुद्रणालय, आगरा रोड, अलीगढ़-202001 छपवाकर, 'विमलांचल', हरिनगर, अलीगढ़-202001 से प्रकाशित।
सम्पादक : पण्डित कैलाशचन्द जैन, अलीगढ़।

पूज्य गुरुदेवश्री के समाधि-दिवस के उपलक्ष्य में-

आत्म-अभ्युदय की साकारमूर्ति : कानजीस्वामी

आध्यात्मिक सत्पुरुष पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी के सन्दर्भ में **नवभारत टाइम्स (दिल्ली) के 14-05-1969** के अंक में प्रकाशिल आलेख उनके 32 वें वार्षिक समाधि-दिवस के अवसर पर यहाँ प्रकाशित किया जा रहा है। **— सम्पादक**

कानजीस्वामी एक जीती-जागती जीवन जोत, आत्म-अभ्युदय की साकारमूर्ति, सारे सौराष्ट्र में जिनकी आत्मक्रान्ति की धूम है, पर शेष भारत भी जिनके प्रकाश से वंचित नहीं।

सुन्दर सलोना शरीर, दैदीप्यमान आभा, सुखद भावमण्डल, वाणी में ओज, जो भी सरल हृदय से सन्मुख हुआ, उस ही की ग्रन्थि खुली, ऐसा शायद ही कोई हो कि जिसने सरलता से सुना तो हो, पर उसे शान्ति न मिली हो।

ऐसा भी आज तक नहीं हुआ कि किसी की बातों को सभी ने सरलता से मान लिया हो, कुछ विरोधी सभी के होते हैं, इनके भी हैं, पर उनके लिए स्वामीजी के हृदय में बड़े सुन्दर विचार हैं, ये श्रद्धालु श्रावकों से कहा करते हैं, **'तुम्हें विरोधियों से घृणा या क्रोध न करना चाहिय, इनमें भी तुम्हारी ही तरह भगवान बसते हैं, इनमें थोड़ी नासमझी है, जब समझ जायेंगे तो स्वयं ही सही रास्ते पर आ जायेंगे, साथ ही तुम्हें भी अपनी समझ के लिए अहंकार न करना चाहिए; बस, सहजरूप में अपनी दृष्टि अप्राप्त की ओर रख, बढ़ते जाना चाहिए।'**

एक बार एक त्यागी ब्रह्मचारी इन का पक्ष लेकर किसी विरोधी भाई से सवाल-जवाब और मुकदमेबाजी की उहापोह में पड़ गये, इनके सामने बात आयी तो वे बोले, 'भाई! समय का समागम तो बहुत थोड़ा है, न जाने कब आयु समाप्त हो जाय, इस मूल्यवान समय को यों हल्की बातों में उलझकर नष्ट न करो, बन सके तो प्राप्त समय को अपने आत्मकल्याण में प्रयोजित कर लो।'

ये सर्व साधारण को बहुत ही सरल भाषा में समझाया करते हैं, इनका कहना है — सबसे पहले तुम यह मानो कि 'तुम हो' तुम्हारा स्वतन्त्र अस्तित्व है। यह कैसे हो सकता है कि जो वस्तुएँ दिखती हैं, वे तो हैं, और जो उन्हें देखनेवाले हैं 'वह नहीं'? इसलिए आकाश, समय और पुद्गल [दिखनेवाली जड़ वस्तुएँ] की तरह ही तुम्हारे में (तुम्हारी) स्वतन्त्र सत्ता है।

अब जिन्होंने अपनी सत्ता स्वीकार कर ली, उनसे यह कहते हैं, 'तुममें जो विकार चलते दिखते हैं, उनके दोषी तुम स्वयं ही हो, क्योंकि अगर तुम दोष का कारण औरों को मानोंगे तो तुम उन्हीं में फेरफार करने का प्रयत्न करते रहोगे और जब सब दोषों के जिम्मेदार अपने को ही मान लोगे तो अपने को ही ठीक करने के प्रयत्न में लग जाओगे; इसलिए दोष दूसरे निमित्तों को न दो, दोष तुम्हारा और केवल तुम्हारा ही है, इसके माने बिना आगे गति नहीं।'

अब जिन्होंने माना (कि) दोष हमारे ही हैं, शत-प्रतिशत हम ही उनके जिम्मेदार है, उनसे आप कहते हैं-देखो! तुम्हारे वास्तविक स्वभाव में दोष नहीं। यदि दोष, स्वभाव का हिस्सा होते तो उसमें से वह निकल नहीं सकते थे। यदि तुम अपने निज के वास्तविक स्वभाव की ओर दृष्टि दोगे तो वे शनैः शनैः स्वतः निकलते जायेंगे, और तब शुद्ध सोने के समान निखर आयेगी तुम्हारी निर्मल आत्मा।

जिस तरह सोने को तपाने से उसका मैल निकल जाता है, उस ही तरह दर्शन-ज्ञान और चारित्ररूप धर्म अंगीकार करने से आत्मा निखरती है।

इन महापुरुष का जन्म आज से 79 साल पहले वैशाख सुदी दूज के दिन सौराष्ट्र के उमराला गाँव में, शाह मोतीचन्द के घर माता उजमबा की कोख से हुआ था।

इनके उपदेश सभी जातियों और प्रदेशों के लोगों के लिए समान हैं, यही कारण है (कि) इनके आश्रय में आये लोगों में सभी जातियों और प्रदेशों के लोग होते हैं, उनमें भाषा भेद या कोई झगड़ा नहीं, सभी प्रेम की डोर में बँधे समानता से धर्म साधन करते हैं। ●

जैसे माता वात्सल्य से बालक को समझाती है उसी प्रकार

आचार्यदेव शिष्य को समझाते हैं

जिस प्रकार माता, बालक को शिक्षा दे, तब किसी समय ऐसा कहती है – बेटा! तू तो बहुत चतुर... तुझे यह शोभा देता है! और कभी ऐसा भी कहती है तू मूर्ख है... पागल है! – इस प्रकार कभी मृदुतायुक्त शब्दों से शिक्षा दे तो कभी कड़क शब्दों से उलहाना दे परन्तु दोनों समय माता के हृदय में पुत्र के हित का ही अभिप्राय है। इसलिए उसकी शिक्षा में कोमलता ही भरी हुई है; उसी प्रकार धर्मात्मा सन्त, बालक जैसे अबुध शिष्यों को समझाने के लिये उपदेश में कभी मृदुता से ऐसा कहते हैं कि हे भाई! तेरा आत्मा सिद्ध जैसा है, उसे तू जान! और कभी कड़क शब्दों में कहते हैं कि अरे मूर्ख! पुरुषार्थहीन नामर्द! तेरे आत्मा को अब तो पहचान, यह मूढ़ता तुझे कब तक रखनी है? अब तो छोड़! – इस प्रकार कभी मृदु सम्बोधन से और कभी कड़क सम्बोधन से उपदेश दें परन्तु दोनों प्रकार के उपदेश के समय उनके हृदय में शिष्य के हित का ही अभिप्राय है। इसलिए उनके उपदेश में कोमलता ही है.... वात्सल्य ही है।

यहाँ समयसार कलश 23 में भी आचार्यदेव कोमलता से सम्बोधन करके शिष्य को उपदेश देते हैं।

अयि! कथमपि मृत्वा तत्त्वकौतूहली सन्
अनुभव भवमूर्तेः पार्श्ववर्ती मुहूर्तम्।
पृथगथ विलसंतं स्वं समालोक्य येन
त्यजसि झगिति मूर्त्या साकमेकत्वमोहम्॥

रे भाई! तू किसी भी प्रकार से तत्त्व का कौतुहली हो। हित की शिक्षा देते हुए आचार्यदेव कहते हैं कि हे भाई! कुछ भी करके तू तत्त्व का जिज्ञासु हो... और देह से भिन्न आत्मा का अनुभव कर। देह के साथ तुझे एकता नहीं है किन्तु भिन्नता है... तेरे चैतन्य का विलास, देह से भिन्न है; इसलिए तेरे उपयोग को पर की ओर से छोड़कर अन्तर में झुका।

पर में तेरा नास्तित्व है, इसलिए तेरे उपयोग को पर से वापस हटा।

तेरे उपयोगस्वरूप आत्मा में पर की प्रतिकूलता नहीं है। मरण जितना कष्ट (बाह्य प्रतिकूलता) आवे तो भी उसकी दृष्टि छोड़कर अन्तर में जीवन्त चैतन्यस्वरूप की दृष्टि कर। **मृत्वा अपि** अर्थात् मरकर भी तू आत्मा का अनुभव कर - ऐसा कहकर आचार्यदेव ने शिष्य को पुरुषार्थ की प्रेरणा दी है। बीच में कोई प्रतिकूलता आवे तो तेरे प्रयत्न को छोड़ मत देना परन्तु मरण जितनी प्रतिकूलता सहन करके भी, तू आत्मा को नजर में लेना... उसका अनुभव करना। मुझे मेरे आत्मा में ही जाना है... उसमें बीच में पर की दखलगिरी कैसी? प्रतिकूलता कैसी? बाहर की प्रतिकूलता का आत्मा में अभाव है-ऐसे उपयोग को पलटाकर आत्मा में झुका। ऐसा करने से पर के साथ एकत्वबुद्धिरूप मोह छूट जायेगा... और तुझे पर से भिन्न तेरा चैतन्यतत्त्व आनन्द के विलाससहित अनुभव में आयेगा।

38 गाथा तक पर से भिन्न शुद्ध जीव का स्वरूप बहुत-बहुत प्रकार से स्पष्ट करके समझाने पर भी जो नहीं समझता और देहादि को आत्मा मानेगा, उसे आचार्यदेव कड़क सम्बोधन करके समझायेंगे कि हमने इतना-इतना समझाया, तथापि जो जीव, देह को -कर्म को तथा राग को ही आत्मा का स्वरूप मानता है, वह जीव मूढ़ है, अज्ञानी है, पुरुषार्थहीन है; पर को ही आत्मा मान-मानकर वह आत्मा के पुरुषार्थ को हार बैठा है। रे पशु जैसे मूढ़! तू समझ रे समझ! भेदज्ञान करके तेरे आत्मा को पर से भिन्न जान... राग से पृथक् चैतन्य का स्वाद ले।

इस प्रकार जैसे माता, बालक को शिक्षा देती है; उसी प्रकार आचार्यदेव, शिष्य को अनेक प्रकार से समझाते हैं। उसमें उसके हित का ही आशय है।

आचार्यदेव कहते हैं कि भाई! जड़ की क्रिया में तेरा धर्म ढूँढ़ना छोड़ दे! इस चैतन्य में तेरा धर्म है, वह कभी जड़ नहीं हुआ। जड़ और चैतन्य दोनों द्रव्यों के भाग करके मैं तुझे कहता हूँ कि यह चेतनद्रव्य ही तेरा है, इसलिए अब जड़ से भिन्न अपने शुद्ध चैतन्यतत्त्व को जानकर, तू सर्व प्रकार से प्रसन्न हो... तेरा चित्त उज्ज्वल करके सावधान हो... और 'यह स्वद्रव्य ही मेरा है' ऐसा तू अनुभव कर। आहा...! ऐसा चैतन्यतत्त्व हमने तुझे दिखाया... अब तू आनन्द में आ... प्रसन्न हो!

जैसे दो लकड़े किसी वस्तु के लिये झगड़ें तो माता बीच में पड़कर

भाग कर डालती है और समाधान कराती है; उसी प्रकार यहाँ आचार्यदेव, जड़-चेतन के भाग करके, बालक जैसे अज्ञानी को समझाते हैं कि ले, यह तेरा भाग! देख... यह चेतन्य है, वह तेरा भाग है और यह जड़ है, वह जड़ का भाग है; तेरा चैतन्य भाग ऐसा का ऐसा सम्पूर्ण शुद्ध है, उसमें कुछ बिगड़ा नहीं है; इसलिए तेरा यह चैतन्य भाग लेकर अब तू प्रसन्न हो... आनन्दित हो... तेरे मन का समाधान करके तेरे चैतन्य को आनन्द से भोग... उसके अतीन्द्रियसुख के स्वाद का अनुभव कर।

अज्ञानी का अज्ञान कैसे मिटे और उसे चैतन्य के सुख का अनुभव कैसे हो? - इसके लिये आचार्यदेव उपदेश देते हैं। कड़क सम्बोधन करके नहीं कहते परन्तु कोमल सम्बोधन करके कहते हैं कि हे वत्स! क्या इस जड़ देह के साथ एकमेकपना तुझे शोभा देता है? नहीं, नहीं; तू तो चैतन्य है... इसलिए जड़ से पृथक् हो... उसका पड़ोसी होकर, उससे भिन्न तेरे चैतन्य को देख। दुनिया की दरकार छोड़कर तेरे चैतन्य को देख! यदि तू दुनिया की अनुकूलता या प्रतिकूलता देखने में रुकेगा तो तेरे चैतन्य भगवान को तू नहीं देख सकेगा। इसलिए दुनिया का लक्ष्य छोड़कर, उससे अकेला पड़कर, अन्तर में तेरे चैतन्य को देख... अन्तर्मुख होते ही तुझे पता पड़ेगा कि चैतन्य का कैसा अद्‌भुत विलास है!

हे बन्धु! तू चौरासी के अवताररूपी कुएँ में पड़ा है, उसमें से बाहर निकलने के लिये जगत के चाहे जितने परीषह या उपसर्ग आवें, मरण जितने कष्ट आवें, तथापि उनकी दरकार छोड़कर तेरे चैतन्य दल को देख। देह या शुभाशुभभाव मेरे स्वघर की चीज नहीं है परन्तु वे तो मेरे पड़ोसी हैं। वे मेरे समीप में रहनेवाले हैं परन्तु मेरे साथ एकमेक होकर रहनेवाले नहीं हैं। इस प्रकार एक बार उनका पड़ोसी होकर पृथक् आत्मा का अनुभव कर! दो घड़ी तो तू ऐसा करके देख! दो घड़ी में ही तुझे तेरे चैतन्य का अपूर्व विलास दिखायी देगा।

यह बात सरल है क्योंकि तेरे स्वभाव की है और तुझसे हो सके ऐसी है तथा ऐसा करने में ही तेरा हित है... इसलिए सर्व प्रकार के उद्यम से तू ऐसे चैतन्य का अनुभव कर - ऐसा सन्तों का उपदेश है। ●

[- सम्यग्दर्शन (गुजराती) भाग-3, पृष्ठ 171-174)]

समाधितन्त्र ग्रन्थ पर पूज्य गुरुदेवश्री का प्रवचन

दु:ख के कारणरूप देहबुद्धि को छोड़ो

अब चौदहवीं गाथा में आचार्यदेव करुणाबुद्धि से कहते हैं कि अरे! ज्ञानानन्दस्वरूप अपने आत्मा को चूककर, यह जगत बाहर में देह को ही अपना आत्मा मानकर तथा स्त्री, पुत्र, सम्पत्ति इत्यादि बाह्य पदार्थों को भी अपना मानकर निन्दनीय प्रवृत्ति करता है। **'हा हतं! जगत्'** अरे! खेद है कि अपनी चैतन्य समृद्धि को भूला हुआ यह जगत्, बाह्य सम्पत्ति में मूर्छित होकर पड़ा है! स्वयं बाहिरात्मबुद्धि के अनन्त दु:ख से छूटकर चिदानन्द तत्त्व को जाना है और जगत् के जीव भी ऐसे आत्मा को जानकर बहिरात्मबुद्धि के अनन्त दु:ख से छूटे – ऐसी करुणाबुद्धि से पूज्यपादस्वामी कहते हैं कि

देहेष्वात्मधिया जाता: पुत्रभार्यादिकल्पना:।
सम्पत्तिमात्मनस्ताभिर्मन्यते हा हतं! जगत्॥14॥

देह में आत्मबुद्धि के कारण यह मेरा पुत्र, यह मेरी स्त्री, यह मेरा पति, ये मेरे माता-पिता, यह मेरा भाई, यह मेरी बहिन – ऐसी कल्पना बहिरात्मा को होती है तथा बाहर में प्रत्यक्ष भिन्न दिखायी देनेवाले घर, गहने, लक्ष्मी, वस्त्र इत्यादि को भी आत्मा की सम्पत्ति मानता है। **हा हतं! जगत्** अरे रे! बेचारा जगत भ्रमणा से ठगाया जा रहा है। खेद है कि चैतन्य की आनन्द सम्पत्ति को भूलकर, जगत् के बहिरात्म जीव, बाहर की सम्पत्ति को ही अपनी मानकर नष्ट हो रहा है; आत्मा की शुध-बुध भूलकर यह जगत, अचेतन जैसा हो रहा है, उसे देखकर सन्तों को करुणा आती है।

देह को आत्मा मानना, वह भ्रम है, वह भ्रम मिथ्यात्व है। मिथ्यात्व महान कषाय है, उस कषायरूपी होली में बहिरात्मा सुलग रहे हैं; शान्तस्वरूप चैतन्य को भूलकर कषाय अग्नि में जल-जलकर बेचारे दु:खी हो रहे हैं।

अरेरे! वे ठगा रहे हैं... भावमरण में मर रहे हैं। इसलिए अरे जीवों! तुम समझो कि देहादि बाह्य पदार्थ, आत्मा के नहीं हैं; आत्मा तो उनसे पृथक् ज्ञान और आनन्दस्वरूप है। ऐसे आत्मा को जानने-मानने अनुभव करने से ही दु:ख मिटकर शान्ति / समाधि होती है।

आत्मा को समाधि कैसे हो, अर्थात् शान्ति कैसे हो, आनन्द कैसे हो, सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र कैसे हो? — उसकी यह बात है।

देह से भिन्न चिदानन्दस्वरूप आत्मा है, उसके ही अवलम्बन से शान्ति-समाधि होती है। देह, वही मैं हूँ - इस प्रकार शरीर में आत्मबुद्धि करता है और अन्तर के चैतन्यस्वरूप में प्रवेश नहीं करता; इसलिए जीव को शान्ति / समाधि नहीं होती। चैतन्यस्वरूप में प्रवेश करने का प्रयास करे तो शान्ति-समाधि होती है। जैसे घर में महावैभव भरा हो परन्तु यदि घर में प्रवेश न करे - उस ओर मुँह भी न घुमाये और दूसरी तरफ मुँह रखे तो उसे वह वैभव कहाँ से दिखेगा? इसी प्रकार आत्मा के चैतन्य घर में ज्ञान, आनन्द, शान्ति का अचिन्त्य वैभव भरा है, परन्तु जीव उसमें प्रवेश नहीं करता - उस ओर मुख भी नहीं करता और बहिर्मुख रहता है; इसलिए उसे अपने निराकुल आनन्द का स्वाद नहीं आता। अपनी चैतन्य सम्पत्ति का उसे भान नहीं है और बाहर की जड़ सम्पत्ति को ही आत्मा की मानता है; इसलिए वह दु:खी है। अरे! खेद है कि बाह्य सम्पदा को अपनी मानकर जीव अपनी अचिन्त्य चेतन सम्पदा को भूल रहे हैं परन्तु —

लक्ष्मी बड़ी अधिकार भी पर बढ़ गया क्या बोलिये

बाहर में सम्पत्ति बढ़े, वहाँ मानों कि मेरी वृद्धि हुई और संयोग छूटे, वहाँ मानो मेरा आत्मा नष्ट हो गया; इस प्रकार अज्ञानी को बाहर में ही आत्मबुद्धि है। मैं तो सबसे भिन्न ज्ञानानन्दस्वरूप आत्मा हूँ, मेरी सम्पत्ति मुझमें ही है - ऐसे निजस्वभाव की दृढ़ता करे तो मिथ्यात्व मिटकर पहले सम्यग्दर्शनरूपी समाधि होती है; पश्चात् अपने चिदानन्दस्वरूप में ऐसा लीन होता है कि जगत् को भूल जाता है (अर्थात् उसका लक्ष्य छूट जाता है); और राग-द्वेष मिट जायें, तब चारित्र अपेक्षा से वीतरागी समाधि होती है।

इसके अतिरिक्त बाहर में अपनापन माननेवाले को समाधि नहीं होती, परन्तु संसार होता है।

आचार्यदेव बहिरात्माओं के प्रति करुणाबुद्धि से कहते हैं कि **हा हतं! जगत्** अरेरे! यह बहिरात्मा जीव **हत** हैं कि चैतन्य को चूककर बाहर में ही आत्मबुद्धि करके उसके संयोग-वियोग में हर्ष-विषाद करते हैं... बाह्य दृष्टि से जगत् के जीव प्रतिक्षण भावमरण करके नष्ट हो रहे हैं। अरे..रे...! खेद है कि यह जीव, भ्रान्ति से हनन को प्राप्त हो रहे हैं... देह से भिन्न ज्ञानानन्दस्वरूप आत्मा को जाने तो उनका उद्धार हो। जैसे पिता बैठे हों और सामने उनका पुत्र गाड़ी के दबकर मर जाता हो तो पिता को करुणा आती है (संयोग के कारण नहीं परन्तु अपने पुत्र के प्रति ममता है, इस कारण।) इसी प्रकार मुनिवर और आचार्य-भगवन्त, मुमुक्षु जीवों के धर्मपिता हैं; इन बहिरात्मा जीवों को अज्ञान से भावमरण में मरते देखकर उन्हें करुणा आती है कि अरे..रे! चैतन्य को चूककर मोह से जगत् मूर्छित हो गया है। उसे अपने आत्मा की सुध-बुध नहीं रही है। अरे! चैतन्य भगवान को यह क्या हुआ कि जड़ कलेवर में मूर्छित हुआ?

अरे जीवो! अन्तर में प्रवेश करके देखो... तुम तो चिदानन्दस्वरूप अमर हो, यह देह तो जड़ विनाशीक है। बहिरात्मबुद्धि के कारण बहिरात्मा अनन्त दुःख भोगते हैं। यहाँ **हा हतं! जगत्** - ऐसा कहकर उनके प्रति करुणा करके, सन्त वह बहिरात्मबुद्धि छुड़ाना चाहते हैं।

इस प्रकार बहिरात्मा का स्वरूप वर्णन करके, अब कहते हैं कि इस देह में आत्मबुद्धि ही संसार के दुःख का मूल है। इसलिए हे जीव! वह बहिरात्मपना छोड़ और अन्तर आत्मा में प्रवेश करके अन्तरात्मा हो।

मूलं संसारदुःखस्य देहे एवात्मधीस्ततः।
त्यक्त्वैनां प्रविशेदन्तर्बहिरव्यापृतेन्द्रियः ॥15॥

इस जड़ शरीर में आत्मबुद्धि करना संसार दुःख का मूलकारण है। इसलिए हे जीव! देह में आत्मपने की मिथ्या-कल्पना छोड़कर, बाह्य

विषयों की ओर की प्रवृत्ति रोक और अन्तर के चैतन्यस्वरूप में प्रवेश कर।

जीव को भ्रान्तिरूपी भूत ऐसा लगा है कि वह देह को ही आत्मा मानकर, शृंगार — नहलाने, धुलाने में सुख मानता है। धर्मात्मा को बाहर में कहीं आत्मबुद्धि नहीं होती। संसार के दु:ख का मूल क्या? शरीरादि, वह मैं - ऐसी मिथ्याबुद्धि ही संसार दु:ख का मूल है। जो देह को आत्मा मानता है, वह अपने ज्ञान को विषयों से परांमुख करके आत्मा की ओर कैसे झुकायेगा? वह तो इन्द्रियों की ओर ही ज्ञान का झुकाव करता है और बाहर में ही व्यापार करता है, वही दु:ख है। इन्द्रियविषयों से परांमुख करके ज्ञान को अन्तर में एकाग्र करने पर अतीन्द्रिय आनन्द का स्वाद आता है। आत्मा में आनन्द का माल भरा है, उसे छोड़कर, मूढ़ जीव बाहर के विषयों में आनन्द मानता है। यहाँ आचार्यदेव, उसे मूढ़बुद्धि छोड़ने की प्रेरणा करते हैं कि अरे जीव! बाह्य विषयों में भटकना छोड़ और अन्तर आत्मा में प्रवेश कर! बाहर में शरीरादिक से तेरा जीवन नहीं; शरीर में मूर्च्छा से तो तेरा भावमरण होता है; तेरा जीवन तो तेरे चिदानन्दस्वरूप में ही है, उसमें तू प्रवेश कर।

जिस प्रकार राजा अपने को भूलकर ऐसा माने कि मैं भिखारी हूँ; इसी प्रकार यह चैतन्य राजा अपने स्वरूप को भूलकर, देह ही मैं हूँ - ऐसा मानकर विषयों का भिखारी हो रहा है, उसका नाम भावमरण है, उस करुणा करके कहते हैं कि अरे जीवों!

तू क्यों भयंकर भावमरण प्रवाह में चकचूर हो

इस देहादिक में आत्मबुद्धि छोड़ों और भिन्न चैतन्यस्वरूप को पहचानकर उसकी श्रद्धा करो... जिससे इन घोर दु:खों से छूटकारा हो और आत्मा का निराकुल सुख प्रगट हो। आत्मा का स्वरूप पहचानकर, फिर उसे साधने से आत्मा स्वयं स्वयंमेव परमात्मा बन जाता है। साध्य और साधन दोनों अपने में है; अपने से बाहर कोई साध्य या साधन नहीं है; इसलिए तुम्हारी चैतन्य सम्पदा को सम्हालो... और बाह्यबुद्धि छोड़ो - ऐसा सन्तों का उपदेश है।

क्रमशः

पूज्य गुरुदेवश्री का प्रेरणादायी मङ्गल प्रवचन

ज्ञानी का उपदेश : आत्मा को पहचानो!

ज्ञानी का उपदेश आत्मा की पहचान करने का है। सत्समागम में उसकी पहचान करना चाहिए। अनन्त-अनन्त काल से यह आत्मा है, तो वह कैसा है ? उसे पहचानने की दरकार करनी चाहिए। मनुष्यदेह अनन्त काल में मिलती है, उसमें आत्मा को समझने की गरज करनी चाहिए, सत्समागम से बारम्बार उसका परिचय करके समझना चाहिए। उसकी पहचान करना ही मनुष्यदेह में आने का वास्तविक फल है, वरना पुण्य करके स्वर्ग में जाये अथवा पाप करके नरक में जाये, वह कोई नया नहीं है।

अहो! ऐसा मनुष्यदेह प्राप्त हुआ और यदि आत्मा को न जाने तो अवतार व्यर्थ है। जैसे सर्वव्यापी आकाश को हाथ में समाहित करना कठिन है; उसी प्रकार आत्मस्वभाव का वर्णन वाणी द्वारा करना कठिन है, तथापि जो जीव दरकार करके उसे समझना चाहता है, उस जीव को सत्समागम से ज्ञान में समझ में आता है। अनन्त जीव उसे समझकर मुक्त हुए हैं, वर्तमान में भी आत्मा को समझनेवाले हैं, और भविष्य में भी अनन्त होंगे। पुण्य और पाप तो पूरी दुनिया करती है परन्तु आत्मा की समझ करनेवाले कोई विरले ही होते हैं। पर में सुख माने और सुख के लिये पर की दासता माने, वह तो भिखारी है। कोई लाखों रुपये माँगे, कोई हजार माँगे, कोई सौ माँगे; अधिक माँगे, वह बड़ा भिखारी है और थोड़ा माँगे, वह छोटा भिखारी है; और ऐसा समझे कि मैं आत्मा हूँ, मुझे कुछ नहीं चाहिए, मेरा सुख मुझमें है; मुझे तो अब आत्मा समझना है - जो ऐसी भावना करता है, वह महा बादशाह है। भले गृहस्थाश्रम में हो, तथापि अन्तर में आत्मा का भान करता है, वह धर्मात्मा है और उसे जन्म-मरण का अन्त आ जायेगा।

जिस प्रकार पर्वत पर बिजली गिरे और दो टुकड़े हो जायें, फिर वे

वापस जुड़ते नहीं हैं; उसी प्रकार जो जीव, एक सैकेण्ड भी आत्मा की समझ करता है, उसका संसार टूट जाता है। जिस प्रकार किसी पर के घर लक्ष्मी का ढेर देखकर 'यह लक्ष्मी मेरी' - ऐसा चतुर लोग नहीं मानते; उसी प्रकार धर्मी जीव इन शरीरादि को या पुण्य-पाप के भावों को अपना स्वरूप नहीं मानते।

- ऐसे आत्मा को जाने बिना किसी प्रकार कल्याण नहीं होगा। जिसने आत्मा को नहीं जाना और पैसे का गुलाम हो रहा है, वह बड़ा भिखारी है।

जैनदर्शन में सात तत्त्व हैं — जीव, अजीव, आस्रव, बन्ध, संवर, निर्जरा, और मोक्ष।

जो जानता है, वह **जीव** है।

शरीर इत्यादि **अजीव** हैं। उनमें ज्ञान नहीं है।

मिथ्यात्व, पुण्य-पाप इत्यादि **आस्रव** हैं।

पुण्य-पाप इत्यादि विकार में अटकना, वह **बन्धन** है।

उन पुण्य-पापरहित चैतन्यमूर्ति आत्मा की पहचान करके, उसमें स्थिर होना, वह **संवर-निर्जरारूप धर्म** है। और

सम्पूर्ण शुद्धदशा प्रगट हो जाना, वह **मोक्ष** है।

इन सात तत्त्वों को जानकर, आत्मा का विश्वास और आदर करना चाहिए। बहुत विवेक से, बहुत सत्समागम से, बहुत पात्रता से और बहुत रुचि से आत्मा समझ में आता है। आत्मा ऐसा नहीं कि समझ में नहीं आये। यदि आत्मा न समझा जा सके, तब तो धर्म ही कहाँ से होगा? इस जगत् में लाखों रुपये मिलें या स्वर्ग मिले, वह दुर्लभ नहीं है; आत्मा की समझ ही दुर्लभ है। इस मानव जीवन में ऐसे आत्मा की समझ करने योग्य है।

वन-जंगल में बसनेवाले और चैतन्य को साधनेवाले मुनिवरों के अन्तर में से आनन्द में झूलते-झूलते ऐसे रणकार उठे कि इस आत्मस्वभाव की महिमा जगत में जयवन्त वर्तो और जगत के जीव उसे पहचानो। जगत् के जीवों को यह एक चैतन्यतत्त्व ही शरणरूप है। ●

जीवादि प्रयोजनभूत तत्त्व : जीवतत्त्व

परमार्थस्वरूप जीव का अलौकिक वर्णन

भगवान आत्मा अनन्त शक्तियों का संग्रहालय है, अनन्त गुणों का गोदाम है ऐसे परमार्थस्वरूप जीव की दृष्टि करने से सम्यग्दर्शनरूपी धर्म प्रगट होता है।

यह समयसार की गाथा 49 वीं अलौकिक है, इसलिए कुन्दकुन्दाचार्यदेव रचित प्रत्येक शास्त्र में यह गाथा आती है तथा धवला के तीसरे भाग में भी यह गाथा उपलब्ध है। इस गाथा में जीव के वास्तविक स्वरूप का अचिन्त्य और अलौकिक वर्णन है। इस गाथा में समागत अव्यक्त के बोल पर पूज्य गुरुदेवश्री द्वारा राजकोट में किये गये प्रवचनों का संक्षिप्त सार यहाँ दिया जा रहा है।

अव्यक्त के बोल चलते हैं, बहुत सूक्ष्म है, ध्यान रखने से समझ में आने योग्य है। भगवान सर्वज्ञ ने चौदह ब्रह्माण्डस्वरूप लोक में जाति अपेक्षा से छह द्रव्य देखे हैं। संख्या से जीव-पुद्गलादि अनन्तानन्त हैं, जो कि ज्ञेय हैं; इसलिए जाननेयोग्य हैं। एक समय की ज्ञानपर्याय इतनी सामर्थ्यवाली है कि चौदह ब्रह्माण्ड के पदार्थों को एक समय में ग्रासीभूत कर लेती है - जान लेती है। यह जानने की सामर्थ्य कितनी है ? - इसका माप बतलाया है। एक सम्प्रदाय कहता है कि जीव की दया पालने के लिये भगवान ने प्रवचन किये हैं, दूसरा सम्प्रदाय कहता है कि जीवों को न मरने के लिये भगवान ने प्रवचन कहे हैं परन्तु ये दोनों बातें मिथ्या हैं। अनन्त जीव हैं, उन्हें जाननेवाली एक समय की ज्ञानपर्याय की सामर्थ्य इतनी महान है, यह बतलाने के लिए भगवान ने प्रवचन कहे हैं। समस्त वस्तुएँ स्वयं के कारण परिणमित है और उन्हें जाननेवाला ज्ञान है, वह स्वयं के कारण जाननेरूप परिणमित होता है; ज्ञेयों के कारण जानता है - ऐसा नहीं है। अरे नाथ! तू सुन तो सही! भगवान कहते हैं कि तू किसकी रक्षा करनेवाला है? प्रत्येक पदार्थ स्वयं अपने से ही रक्षित हैं, उनका तू

जाननेवाला है, तथापि उनके कारण नहीं; तू तेरे कारण जाननेवाला है। तू समझ का ही संग्रहालय है, आनन्द का कन्द प्रभु है।

छह द्रव्यस्वरूप लोक है, वह ज्ञेय है, उससे जीव भिन्न है; इसलिए जीव सातवाँ द्रव्य है – ऐसा क्षुल्लक धर्मदासजी ने कहा है। छह द्रव्यस्वरूप लोक, वह व्यक्त है, इसलिए बाह्य है; उससे जीव अन्य है, इसलिए अव्यक्त है। लोक व्यक्त है, उसे जाननेवाला त्रिकाली तत्त्व-ज्ञानगुण, वह अव्यक्त है। एक समय की ज्ञानपर्याय प्रगट है, उससे त्रिकाली तत्त्व अव्यक्त है – ऐसे जीव की दृष्टि करना सम्यग्दर्शन है।

आबाल-गोपाल सब ज्ञान ही कर रहे हैं, सबको ज्ञान का ही अनुभव होता है; राग या शरीरादि का अनुभव नहीं होता तो भी, पर को मैं करता हूँ – ऐसा मानते हैं। होता है तो ज्ञान ही परन्तु भ्रम से मानते हैं कि मैं करता हूँ। अरे भगवान! तेरी महिमा कितनी है और तू तुझे कितना हीन मान रहा है? – इसकी तुझे समझ कराते हैं। छह द्रव्यस्वरूप लोक ज्ञेय है और उसे जाननेवाली एक समय की ज्ञानपर्याय है। ज्ञानपर्याय को और ज्ञेय को निमित्त-नैमित्तिक सम्बन्ध है। ज्ञानगुण तो ध्रुव है, उसके साथ ज्ञेय-ज्ञायक सम्बन्ध भी नहीं है।

छह द्रव्यस्वरूप लोक ज्ञेय है, इसलिए वह प्रगट है, बाह्य है; उससे जीव अन्य है, इसलिए भिन्न है, अव्यक्त है। सर्वज्ञपर्याय में जानने की कितनी ताकत है, वह बतलाने के लिये अनन्त पदार्थ हैं, अनन्त जीव हैं – ऐसा कहा है परन्तु अनन्त जीव बचाने योग्य है, इसलिए कहा है – ऐसा नहीं है। ज्ञेय होने से जाननेयोग्य है। पञ्च परमेष्ठी भगवान और भगवान की दिव्यध्वनि भी छह द्रव्यस्वरूप लोक में आ जाती है; इसलिए जाननेयोग्य है – ऐसा कहा है। पर की दया पालने का भाव, शुभराग है; राग में स्व का घात होता होने से परमार्थ से वह हिंसा है। वह राग भी ज्ञान में जाननेयोग्य होने से ज्ञेय है, व्यक्त है, प्रगट है; उससे जीव भिन्न है, अन्य है; इसलिए अव्यक्त है।

'ग्रन्थाधिराज तारामा भावो ब्रह्माण्ड न भर्‌या' – ऐसा समयसार स्तुति

में आता है न! इसमें ब्रह्माण्ड के भाव भरे हैं, सन्तों ने करुणा करके मार्ग सहज कर दिया है। सन्त अर्थात् केवली के पथानुगामी! जो छह द्रव्य को मानते हैं और एक समय की पर्याय को मानते हैं, परन्तु अपने त्रिकाली द्रव्य को नहीं मानते तो वे एकान्त मिथ्यादृष्टि हैं। द्रव्यस्वरूप लोक प्रगट है, व्यक्त है; उसकी अपेक्षा से जीव अप्रगट है, अव्यक्त है परन्तु स्वयं की अपेक्षा से तो जीव प्रगट ही है, व्यक्त ही है।

अव्यक्त के दूसरे बोल में कहते हैं कि कषायों का समूह अर्थात् पुण्य-पाप के भाव, वह कषाय का समूह है। वह भावकभाव है, अर्थात् कर्म का भाव है, वह व्यक्त है। विकारी कार्य को भावक का, अर्थात् पुद्गलकर्म का भाव कहकर इससे भिन्न कहा है।

गाथा 32 में विकार को भावक का भाव कहा है क्योंकि विकार वह वस्तुत: जीव का कर्त्तव्य नहीं है। कर्म को अनुसरण करके विकार होता है, इसलिए उसे भावक का भाव कहा है। गाथा 32 में भावक के भाव को, अर्थात् विकार को जीतने की बात की है। विकार को होने नहीं दिया; इसलिए आंशिक विकार को जीता - ऐसी वहाँ बात की है। यहाँ गाथा 49 में भावक का भाव / विकारीभाव है अवश्य, परन्तु जीव उससे भिन्न है - ऐसा सम्यग्दृष्टि जानता है। जीव को जान! ऐसा कहा है। विकार को जान! - ऐसा नहीं कहा परन्तु उससे जीव अन्य है, अव्यक्त है - ऐसे जीव को जानने का कहा है।

दया, दान, भक्ति से कल्याण होता है - ऐसा जो कहते हैं, वे सभी मूढ़ जीव है, मिथ्यादृष्टि है। कषाय के समूह से जीव भिन्न है, इसका उन मूढ़ जीवों को पता नहीं है। यह तो वस्तुस्थिति की बात है - ऐसी बातें सुनने को मिलना, उसे शास्त्र का सौभाग्य कहते हैं। धन-वैभव मिले, उसे सौभाग्य नहीं कहते हैं।

कषायों का समूह, अर्थात् भावक कर्म का भाव है; जीव का भाव नहीं। कषाय के भाव की अस्ति है, मौजूदगी है, विद्यमानता है; उससे जीव अन्य है, भिन्न है, अव्यक्त है - ऐसे जीव को तू जान! - ऐसा कहा है।

कषाय के समूह को जान! ऐसा नहीं कहा परन्तु कषाय के समूह से भिन्न भगवान आत्मा आनन्दकन्द है, शान्ति का सागर है, निराकुलता का पिण्ड है – ऐसे आत्मा को तू जान – ऐसा कहा है। भगवान आत्मा को न्यूनाधिक या विपरीत मानने पर वह जवाब नहीं देता। जैसा स्वभाव है, वैसा आत्मा को जानने से अतीन्द्रिय आनन्द प्रगट होगा।

अव्यक्त के तीसरे बोल में कहते हैं कि चित्सामान्य में चैतन्य की समस्त व्यक्तियाँ निमग्न हैं, अन्तर्भूत है; इसलिए अव्यक्त है। चित्सामान्य, अर्थात् त्रिकाली ध्रुव वस्तु में चैतन्य की सर्व व्यक्तियाँ, अर्थात् भूत-भावि की पर्यायें अन्तर्भूत है – ऐसा उत्पाद-पर्याय, अर्थात् वर्तमान प्रगट पर्याय जानती है। किसी का ऐसा अभिप्राय है कि भूत-भावि की पर्यायें, द्रव्य में अन्तर्भूत है; वैसे वर्तमान पर्याय भी अन्तर्भूत होकर दृष्टि का विषय है परन्तु यह बात यथार्थ नहीं है। वर्तमान पर्याय तो प्रगटरूप है, वह पर्याय तो निर्णय करनेवाली है कि भूत-भावि की पर्यायें, द्रव्य में अन्तर्भूत हैं; प्रगटरूप नहीं परन्तु योग्यतारूप द्रव्यसामान्य में है – ऐसा वर्तमान पर्याय जानती है – निर्णय करती है। निर्णय करनेवाली प्रगट पर्याय, द्रव्य से भिन्न रहकर निर्णय करती है। दृष्टि के विषय में वह मिलती नहीं परन्तु भिन्न रहकर निर्णय करती है।

भूतकाल में जो रागादिभाव हुए थे, वे पर्यायें, द्रव्यसामान्य में अन्दर गयी है परन्तु वे पर्यायें, रागादि उदयभावोंरूप नहीं रही; सहजभाव, अर्थात् पारिणामिकभावरूप होकर रहती है, योग्यतारूप से रहती है। भूत-भावि की पर्यायें, योग्यतारूप अन्तर्भूत है, सामान्यरूप है – ऐसा वर्तमान उत्पाद-पर्याय निर्णय करती है। निर्णय करनेवाली पर्याय प्रगट है, उसकी अपेक्षा से चित्सामान्य अव्यक्त है। द्रव्य है तो प्रगट ही, परन्तु उत्पाद-पर्याय की अपेक्षा से द्रव्य को अप्रगट है, अव्यक्त है-ऐसा कहा जाता है। जैसे समुद्र कायम रहता है और तरंगें पलटती है; उसी प्रकार भगवान आत्मा, समुद्र समान कायम ध्रुव रहकर, पर्यायें पलटती हैं। भूत-भावि की पर्यायें जो कि हो गयी हैं और होनेवाली हैं, वे सभी द्रव्यसामान्य में अन्तर्भूत है – ऐसा प्रगट पर्याय जानती है।

अव्यक्त का चौथा बोल कहता है कि क्षणिक व्यक्तिमात्र नहीं, इसलिए अव्यक्त है। वर्तमान पर्याय के स्वीकार में ही तेरी नजर और लीनता हुई है। नहीं बाहर में रमा या नहीं अन्दर चैतन्यसामान्य में रमा; पर्याय में ही रमा है, वह पर्यायबुद्धि मिथ्यादृष्टि है। भाई! यह तेरी महानता की बात चलती है, बड़े घर के कहेण (लगन) वापस नहीं फिरते। भाई! तू रागादिरूप हुआ ही नहीं, विकल्परूप भी तू नहीं और क्षणिक अवस्था जितना भी तू नहीं; क्षणिक व्यक्ति, अर्थात् पर्यायों जितना तू नहीं है। क्षणिक व्यक्ति है अवश्य परन्तु तू उतना नहीं; अन्दर आनन्दकन्द प्रभुरूप से तू पूरा है। दो अंश स्वरूप वस्तु है, उनमें एक अंश पलटता है और दूसरा अंश ध्रुवरूप है। तू पलटती पर्याय जितना नहीं परन्तु ध्रुवरूप है।

अव्यक्त का पाँचवाँ बोल — व्यक्तपना और अव्यक्तपना मिश्रितरूप से प्रतिभासित होने पर भी, वह व्यक्तपने को स्पर्श नहीं करता; इसलिए अव्यक्त है। व्यक्तपना, अर्थात् प्रगट पर्याय; अव्यक्तपना, अर्थात् त्रिकाली ध्रुवद्रव्य; ये दोनों एक समय में मिश्रितरूप से प्रतिभासित होने पर भी, व्यक्तपने को स्पर्श नहीं करता। भगवान आत्मा ध्रुव है, वह व्यक्त पर्याय को स्पर्श नहीं करता, छूता नहीं; इसलिए अव्यक्त है। वर्तमान पर्याय में क्षणिक का और ध्रुव वस्तु का ज्ञान होता है, तथापि ध्रुववस्तु, क्षणिक पर्याय को स्पर्श नहीं करती। यदि क्षणिक पर्याय में ध्रुव आ जाये तो ध्रुव वस्तु का नाश हो जाये। व्यक्त को तथा अव्यक्त को ज्ञान की प्रगट पर्याय जानती है। व्यक्त पर्याय अपने को और ध्रुव द्रव्य को जानती है, तथापि ध्रुव आत्मा व्यक्त पर्याय को स्पर्श नहीं करता; इसलिए अव्यक्त है।

छठवें बोल में कहा है कि भगवान आत्मा स्वयं अपने से ही बाह्य -अभ्यन्तर स्पष्ट अनुभव में आ रहा है, अर्थात् पर्याय में पर्याय का तथा त्रिकाली का स्पष्ट अनुभव है, तथापि एक समय के आनन्द के अनुभव से उदासीन वर्तता है और त्रिकाली की ओर झुक जाता है; इसलिए अव्यक्त है। विकल्प, निमित्त या संयोग की अपेक्षा बिना स्वयं अपने से ही अपने को बाह्य-अभ्यन्तर अनुभव करता है। बाह्य, अर्थात् एक समय की आनन्द

की पर्याय को अनुभव करता है और अभ्यन्तर, अर्थात् त्रिकाली ध्रुवतत्त्व को भी स्पष्ट अनुभव करता है। त्रिकाली स्वयं वेदन में नहीं आता परन्तु त्रिकाली का ज्ञान, अनुभव में आता है। इस प्रकार बाह्य-अभ्यन्तर प्रत्यक्ष अनुभव में आने पर भी, एक समय के आनन्द की पर्याय में नहीं रुकता परन्तु उससे उदासीनरूप से वर्तता हुआ त्रिकाली की ओर झुकता है। प्रगट आनन्द की व्यक्तदशा से उदासीन वर्तता होने से भगवान आत्मा अव्यक्त है।●

तीर्थधाम मङ्गलायतन
द्वारा सञ्चालित
भगवान श्री आदिनाथ विद्यानिकेतन
में प्रवेश हेतु

मङ्गलार्थी छात्रों को अपूर्व अवसर

तीर्थधाम मङ्गलायतन द्वारा संचालित भगवान श्री आदिनाथ विद्यानिकेतन के आगामी सत्र में हिन्दी एवं अंग्रेजी माध्यम से कक्षा सात उत्तीर्ण कर चुके छात्रों को इस वर्ष मात्र कक्षा आठ में प्रवेश दिया जाएगा। जो भी छात्र यहाँ के सुमधुर वातावरण में रहकर उच्चस्तरीय लौकिक शिक्षा के साथ-साथ धार्मिक एवं नैतिक शिक्षा का लाभ भी प्राप्त करना चाहते हैं। वे हमारे कार्यालय से प्रवेश आवेदन पत्र मँगाकर अपेक्षित जानकारियों एवं प्रपत्रों के साथ भरकर भेज दें। विदित हो कि 60 प्रतिशत या उससे ऊपर अंक प्राप्त विद्यार्थी ही आवेदन के योग्य हैं। स्थान सीमित हैं, अत: शीघ्र ही आवेदन-पत्र भेजने का अनुरोध है। आवेदन पत्र भेजने की अन्तिम तिथि 15 मार्च 2013 निर्धारित की गयी है।

प्रवेशयोग्य समझे जाने पर उन्हें अप्रैल 2013 माह के आयोजित प्रवेश पात्रता शिविर में बुलाया जाएगा, जिसमें पूरे समय उपस्थित रहना अनिवार्य होगा।

निदेशक, तीर्थधाम मङ्गलायतन, भगवानश्री आदिनाथ विद्यानिकेतन
अलीगढ़-आगरामार्ग, सासनी-204216(उत्तर प्रदेश)
फोन : 09897069969, 09897890893

त....त्त्व....च....र्चा

(बांकानेर, चेत्र शुक्ला 8 से 13 की रात्रि-चर्चा में से)

प्रश्न : एक समय में राग और वीतरागता दोनों भाव साथ में होते हैं ?

उत्तर : हाँ; साधक को आंशिक राग और आंशिक वीतरागता – ऐसे दोनों भाव एक साथ होते हैं। जैसे, सम्यग्दर्शन हुआ, वहाँ आंशिक शुद्धता प्रगट हुई और अभी साधक को अशुद्धता भी है; इस प्रकार आंशिक शुद्धता और आंशिक अशुद्धता – ऐसे दोनों भाव, साधकदशा में एक साथ होते हैं परन्तु उसमें जो शुद्धता है, वह संवर-निर्जरा का कारण है और जो अशुद्धता है, वह आस्रव-बन्ध का कारण है; इसलिए साधक को आस्रव-बन्ध-संवर और निर्जरा – ऐसे चारों ही प्रकार एक साथ होते हैं।

अहो ! यह तो अध्यात्मतत्त्व का अन्तरंग विषय है। यह हिन्दुस्तान की मूल विद्या है।

प्रश्न : जब राग पर लक्ष्य हो, तब तो ज्ञानी को बहिर्मुखता ही है न ?

उत्तर : राग पर भले ही उपयोग का लक्ष्य हो परन्तु उस समय भी अन्दर साधक को रागरहित शुद्धपरिणति तो वर्तती ही है। उपयोग भले ही बाहर में हो, इससे कहीं जो शुद्धपरिणति प्रगट हुई है, उसका अभाव नहीं होता, जितनी शुद्धता है, उतनी अन्तर्मुखपरिणति है।

प्रश्न : सम्यग्दर्शन प्राप्त करना ही है तो उसे क्या करना ?

उत्तर : राग और चैतन्य को भिन्न जानकर चैतन्यस्वभाव में अन्तर्मुख होना। पहले अन्तर में ज्ञान से निर्णय करे, पश्चात् अन्तर्मुख उपयोग द्वारा निर्विकल्प अनुभव होने पर सम्यग्दर्शन होता है परन्तु पहले उसकी योग्यता के लिये ही बहुत तैयारी चाहिए। देव-गुरु-शास्त्र कैसे होते हैं ? उन्हें पहचानकर उनका विनय-बहुमान हो और उनके द्वारा कथित तत्त्व को पहचाने, पश्चात् अन्तर्मुख होने पर सम्यक्त्व होता है।

प्रश्न : आत्मा ने यह हाथ ऊँचा किया – ऐसा दिखता है न ?

उत्तर : नहीं; ऐसा दिखता नहीं परन्तु स्वयं की मिथ्या कल्पना से ऐसा मानता है कि आत्मा ने हाथ ऊँचा किया। आत्मा तो कहीं इसे आँख

से दिखता नहीं, शरीर को देखता है; शरीर का हाथ ऊँचा हुआ – ऐसा दिखता है परन्तु आत्मा ने वह ऊँचा किया – ऐसा तो कहीं दिखता नहीं। एक आत्मा अपने से भिन्न दूसरे पदार्थ का कुछ भी करे, यह बात मिथ्या है। इस मिथ्यात्व में विपरीत अभिप्राय का महापाप है। उसमें चैतन्य की विराधना है। यह मोटा दोष अज्ञानियों को ख्याल में नहीं आता। पाप-परिणाम करे और पैसा मिले – वहाँ कोई ऐसा माने कि पाप के कारण पैसा मिला तो यह बात जैसे मिथ्या है, उसी प्रकार हाथ ऊँचा होने पर, आत्मा ने उसे ऊँचा किया – ऐसा मानना भी मिथ्या है।

प्रश्न : आत्मा कहाँ रहता है ?

उत्तर : आत्मा, आत्मा में रहता है; आत्मा, शरीर में नहीं रहा है। शरीर और आत्मा भले ही एक जगह हो परन्तु आत्मा की सत्ता शरीर से भिन्न है। आत्मा तो चैतन्य प्रकाशी है।

आत्मा स्वयं ही है परन्तु अज्ञान के कारण स्वयं अपनी सत्ता को ही भूल गया है। इसलिए आत्मा तो मानो गुम हो गया! ऐसा लगता है। यदि अन्तरमंथन करे तो अपने में ही अपना पता लगे ऐसा है।

प्रश्न : भेदज्ञान करने के लिये सीधा और सरल उपाय क्या ?

उत्तर : भिन्न लक्षण जानकर भिन्न जानना, (यही सीधा और सरल उपाय है)।

प्रश्न : यह किस प्रकार हो ?

उत्तर : अन्दर विचार करना चाहिए कि अन्दर जाननेवाला तत्त्व है, वह मैं हूँ और विकल्प की वृत्ति का उत्थान, वह मेरे चैतन्य से भिन्न है।

प्रश्न : मिथ्यात्व के अभाव के लिये शुभभाव और क्रिया की आवश्यकता नहीं लगती ?

उत्तर : भाई! शुभभाव से या देह की क्रिया से मिथ्यात्व का नाश हो – ऐसा जो मानता है, उसे तो मिथ्यात्व का पोषण होता है। मुझे शुभभाव से धर्म होगा और मैं देह की क्रिया कर सकता हूँ – ऐसा माने तो उसमें मिथ्यात्व का पोषण होता है।

प्रश्न : तो फिर सम्यक्त्व का मार्ग क्या ?

उत्तर : इस राग से पार चैतन्य को जानना, वह सम्यक्त्व का मार्ग है। इसके बिना शुभभाव तो अनन्त बार किये। भाई! समझ का घर गहरा है। उसके लिये सत्समागम का बहुत अभ्यास चाहिए, बहुत पात्रता और बहुत जिज्ञासा चाहिए।

प्रश्न : आत्मा को जानने से क्या होता है?

उत्तर : अन्तर में उपयोग लगाकर आत्मा को जानने से अतीन्द्रिय आनन्द का स्वाद आवे, ऐसा अपूर्व स्वाद आवे कि पूर्व में कभी आया नहीं था परन्तु वह कहीं बातें करने से हो, ऐसा नहीं है, उसके लिये तो अन्तर का कोई अपूर्व पुरुषार्थ चाहिए।

प्रश्न : वांचन-श्रवण बहुत करने पर भी अनुभव क्यों नहीं होता?

उत्तर : अन्दर में वैसा यथार्थ कारण नहीं देता इसलिए; यदि यथार्थ कारण दे तो कार्य हो ही। अन्तर की धगश से विचारणा जगे और स्वभाव की ओर का प्रयत्न करे तो आत्मा का कार्य न हो, ऐसा नहीं हो सकता। प्रयत्न करे राग का, और कार्य चाहे स्वभाव का - यह कहाँ से आये? स्वभाव की ओर का प्रयत्न करे तो स्वभाव का कार्य (सम्यग्दर्शन) अवश्य प्रगट हो। इसके लिए अन्दर का गहरा प्रयत्न चाहिए।

तिथियों में परिवर्तन

समयसार व्याख्यानमाला का विशेष आयोजन

दिनांक 07 फरवरी 2013 से 21 फरवरी 2013 तक

तीर्थधाम मङ्गलायतन : तीर्थधाम मङ्गलायतन में पूज्य गुरुदेवश्री के अनन्यभक्त बाल ब्रह्मचारी हेमन्तभाई गाँधी सोनगढ़ द्वारा वार्षिक उत्सव के बाद 07 से 21 फरवरी 2013 तक समयसार पर विशेष व्याख्यान आयोजित किये गये हैं। इस अवसर पर पूज्य गुरुदेवश्री के सी.डी. प्रवचन भी समयसार ग्रन्थ पर रहेंगे। साथ ही स्थानीय विद्वानों का भी लाभ प्राप्त होगा। इस अवसर पर आत्मार्थी बन्धु सादर आमन्त्रित हैं। कृपया पधारने की सूचना अवश्य प्रेषित करने का अनुरोध है।

विदित हो कि ब्रह्मचारी हेमन्तभाई गाँधी, वार्षिक महोत्सव में भी उपस्थित रहेंगे एवं उनके स्वाध्याय का लाभ प्राप्त होगा।

राजा वज्रजंघ की कथा

अनुमोदना का उत्तम फल

एक बार राजा ऋषभदेव के जीव, राजा वज्रजंघ को वन में मुनिराज के आहारदान का लाभ प्राप्त हुआ। अपने द्वारपाल के कहने से उन्हें ज्ञात हुआ कि ये दोनों मुनि तो उनके ही अन्तिम पुत्र थे। इस कारण राजा वज्रजंघ अपनी सहधर्मिणी रानी श्रीमती के साथ अत्यन्त प्रेम से वन में मुनि के समीप गये और पुण्य-प्राप्ति की इच्छा से सद्गृहस्थों का धर्म सुनने लगे। दान, पूजा, शील और प्रोषध आदि धर्मों का विस्तृत स्वरूप सुनने के पश्चात् राजा वज्रजंघ ने मुनिराज से अपने और श्रीमती के पूर्व भव के सम्बन्ध में पूछा। राजा के प्रश्न के उत्तररूप में दमधर नामक मुनि, अपनी दाँतों की किरणों से दशों दिशाओं में प्रकाश फैलाते हुए दोनों के पूर्व भव इस प्रकार कहने लगे –

★ ★ ★

'हे राजन! तू इस जन्म से (पूर्व) के चौथे भव में जम्बूद्वीप के विदेहक्षेत्र में स्थित गंधिला देश के सिंहपुर नगर में राजा श्रीषेण और अतिशय मनोहर सुन्दरी नाम की रानी का बड़ा पुत्र था। वहाँ तुमने विरक्त होकर जैनेश्वरी दीक्षा धारण की थी, परन्तु संयम प्रगट नहीं कर सके थे और विद्याधर राजाओं में चित्त लगाकर मृत्यु को प्राप्त हुए, जिससे गंधिला देश के विजयार्द्ध पर्वत की उत्तरश्रेणी पर 'अलका' नगरी में महाबल राजा हुए। वहाँ तुमने मनवांछित भोगों का अनुभव किया, तत्पश्चात् स्वयंबुद्ध मन्त्री के उपदेश से आत्मज्ञान प्राप्त करके जिनपूजा की और समाधिमरण-

पूर्वक शरीर का त्याग करके स्वर्ग में ललितांगदेव हुआ और वहाँ से च्युत होकर अब वज्रजंघ राजा हुए हो।

यह श्रीमती भी पहले एक भव में घातकीखण्ड द्वीप में पूर्व मेरु से पश्चिम की ओर गंधिला देश के पलालपर्वत नामक गाँव में किसी गृहस्थ की पुत्री थी। वहाँ से किसी पुण्य के उदय से यह उसी देश के पाटली नामक गाँव में किसी वणिक के यहाँ निर्णामिका नामक पुत्री हुई। वहाँ इसने पिहितास्त्रव नामक मुनिराज के उपदेश से विधिपूर्वक जिनेन्द्र गुणसम्पत्ति और श्रुतज्ञान नामक व्रतों के उपवास किये, जिसके फलस्वरूप श्रीप्रभ विमान में स्वयंप्रभा देवी हुई थी। जब तुम ललितांगदेव की पर्याय में थे, तब यह तुम्हारी प्रिय देवी थी और वहाँ से चयकर वज्रदन्त चक्रवर्ती की श्रीमती नामक पुत्री हुई है।'

इस प्रकार राजा वज्रजंघ ने श्रीमती के साथ अपने पूर्व भव सुनकर कौतूहल से अपने प्रिय सम्बन्धियों के पूर्व भव पूछते हुए कहा - 'हे नाथ! वह मतिवर, आनन्द, धनमित्र और अकम्पन्न मुझे मेरे भाई के समान अतिशय प्रिय हैं। अत: आप प्रसन्न होकर उनके पूर्व भव बतलाने का अनुग्रह करें।' इस प्रकार राजा का प्रश्न सुनकर उत्तर में मुनिराज कहने लगे कि –

★ ★ ★

'हे राजन! इस जम्बूद्वीप के पूर्व विदेहक्षेत्र में एक वत्सकावती नाम का देश है, जो स्वर्ग के समान सुन्दर है। उसमें एक प्रभाकरी नाम की नगरी है। यह मतिवर पूर्व भव में उसी नगरी में अतिगृद्ध नाम का राजा था, वह विषयों में अत्यन्त आसक्त रहता था। उसने आरम्भ और परिग्रह के करण नरक का बन्ध कर लिया था, जिसके फलस्वरूप वह मरकर पंखप्रभा नामक चौथे नरक में उत्पन्न हुआ। वहाँ दस सागर तक नरकों के दु:ख भोगता रहा। उसने पूर्व भव में उसी प्रभाकर नगरी के बाजु में एक पर्वत पर अपना बहुत-सा धन गाड़ रखा था, वह नरक से निकलकर उसी पर्वत पर सिंह हुआ। तत्पश्चात् किसी एक दिन प्रभाकरी नगरी के राजा प्रीतिवर्द्धन अपने प्रतिकूल छोटे भाई को जीतकर वापिस जाते हुए उसी पर्वत पर रुके।

वहाँ वे अपने छोटे भाई के साथ बैठे थे, इतने में पुरोहित ने आकर उनसे कहा कि आज यहाँ आपको मुनिदान के प्रभाव से महान लाभ होनेवाला है। हे राजन! वे मुनिराज यहाँ किस प्रकार प्राप्त हो सकेंगे ? इसका उपाय मैं आपको कहता हूँ, सुनो!'

हम नगर में ऐसी घोषणा करा देते हैं कि आज राजा के अत्यन्त आनन्द का समय है, अत: सभी नगरजन अपने–अपने घरों पर ध्वजाएँ फहराएँ, तोरण बाँधें और घर के आँगन तथा गलियों में सुगन्धित जल छाँटकर इस प्रकार फूल बिछा दें कि बीच में कहीं जगह नहीं रहे। ऐसा करने से नगर में जानेवाले मुनि, मार्ग अप्रासुक होने के कारण नगर को अपने विहार के अयोग्य समझकर वहाँ से वापस यहाँ अवश्य पधारेंगे ही। पुरोहित के वचनों से सन्तुष्ट होकर राजा प्रीतिवर्धन ने ऐसा ही किया। इस कारण मुनिराज वापस आकर, वहाँ महिने का उपवास पूरा करके आहार के लिए घूमते–घूमते क्रम से राजा प्रीतिवर्धन के गृह में दाखिल हुए। राजा ने उनको विधिपूर्वक आहारदान दिया। जिससे देवों ने आकाश से रत्नों की वर्षा की और वे रत्न मनोहर शब्द करते हुए जमीन पर गिरे। राजा अतिगृद्ध के जीव सिंह को यह सब देखकर जातिस्मरण ज्ञान हो गया और वह अत्यन्त शान्त हो गया। उसकी मूर्च्छा (मोह) मिट गयी। उसने शरीर और आहार से भी ममत्व त्याग दिया। वह समस्त कषायों का त्याग करके एक शिला पर बैठ गया।

मुनिराज पिहितास्रव ने भी अपने अवधिज्ञानरूपी नेत्र से सिंह की समस्त स्थिति जानकर राजा प्रीतिवर्धन से कहा – 'हे राजा! इस पर्वत पर कोई श्रावक होकर तप कर रहा है, तुझे उसकी सेवा करनी चाहिए। वह आगामी काल में भरतक्षेत्र के प्रथम तीर्थङ्कर श्री ऋषभदेव का चक्रवर्ती पद का धारक पुत्र होगा और उसी भव से मोक्ष प्राप्त करेगा, इसमें कोई शङ्का नहीं है।'

मुनिराज के इन वाक्यों से राजा प्रीतिवर्धन को अत्यन्त आश्चर्य हुआ। उसने मुनिराज के साथ वहाँ जाकर अत्यन्त साहस करनेवाले सिंह को

देखा। तत्पश्चात् राजा ने उसकी सेवा और समाधि में योग्य सहायता की और 'वह देव होनेवाला है' – ऐसा समझकर मुनिराज ने भी उसके कान में नमस्कार मन्त्र सुनाया। वह सिंह अठारह दिनों तक आहार का त्याग करके समाधिपूर्वक शरीर का परित्याग करके दूसरे स्वर्ग में दिवाकर विमान में दिवाकरप्रभ नाम का देव हुआ।

इस आश्चर्य को देखकर राजा प्रीतिवर्धन का सेनापति, मन्त्री और पुरोहित भी तुरन्त ही अत्यन्त शान्त हो गये। इन सब ने राजा के द्वारा दिये गये पात्रदान को अनुमोदना की थी, जिसके फलस्वरूप आयु पूर्ण होने के पश्चात् उत्तरकुरु भोगभूमि में आर्य हुए और आयु के अन्त में वहाँ से ईशान स्वर्ग में लक्ष्मीमान देव हुए। उनमें से मन्त्री कांचन नामक विमान में कनकाभ नाम का देव हुआ, पुरोहित ऋषि नामक विमान में प्रभंजन नाम का देव हुआ और सेनापति प्रभा नामक विमान में प्रभाकर नाम का देव हुआ। तुम्हारी ललितांग देव की पर्याय में ये सब तुम्हारे परिवार के ही देव थे। सिंह का जीव वहाँ से चयकर राजा मतिसागर और श्रीमती का पुत्र होकर तुम्हारा मतिवर नाम का मन्त्री हुआ है। प्रभाकर का जीव वहाँ से चयकर अपराजित सेनानी आर्जवा का पुत्र होकर तुम्हारा अकम्पन नाम का सेनापति हुआ है। कनकप्रभ का जीव पिता श्रुतकीर्ति और माता अनन्तमति का पुत्र होकर तुम्हारा आनन्द नाम का प्रिय पुरोहित हुआ है तथा प्रभंजनदेव वहाँ से च्युत होकर धनदत्त और धनदत्ता का पुत्र होकर तुम्हारा धनमित्र नाम का सम्पत्तिशाली सेठ हुआ है। इस प्रकार मुनिराज के वचन सुनकर राजा वज्रजंघ और श्रीमती दोनों को धर्म में अत्यन्त प्रीति हुई।

राजा वज्रजंघ ने फिर अत्यन्त आश्चर्यपूर्वक उन मुनिराज से पूछा कि यह नेवला, सिंह, बन्दर और सूअर चारों ही आपके मुख कमल में दृष्टि लगाकर इन मनुष्यों के मध्य निर्भय होकर कैसे बैठे हैं? इस प्रकार राजा के पूछने पर चारित्रऋद्धि के धारक ऋषिराज बोले – हे राजन! यह सिंह पूर्व भव में इसी देश में प्रसिद्ध हस्तिनापुर नगर में सागरदत्त और धनवती

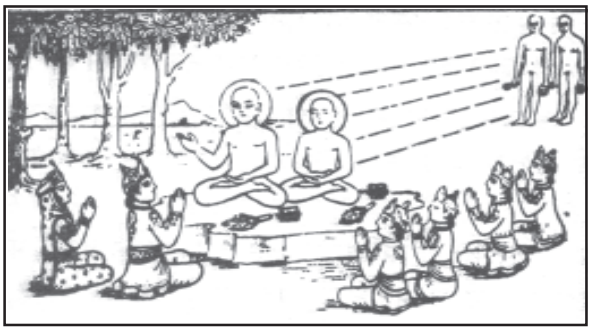

का उग्रसेन नाम का पुत्र हुआ था। वह उग्रसेन, स्वभाव से ही अत्यन्त क्रोधी था - इस कारण उस अज्ञानी ने अनन्तानुबन्धी क्रोध के निमित्त से तिर्यंच आयु का बन्ध कर लिया था। एक दिन उस दुष्ट ने राजा के भण्डार की रक्षा करनेवाले लोगों को मारकर वहाँ से बहुत सा घी और चावल निकालकर वैश्या को दे दिए। जब राजा ने यह समाचार सुने तो उसने उसे बाँधकर तमाचों, घूसों और डण्डों से बहुत मारने का दण्ड दिया। जिससे अत्यन्त वेदना से मरकर वह यहाँ सिंह हुआ है।

हे राजन! यह सूअर पूर्व भव में विजय नामक नगर में राजा महानन्द और बसन्तसेना का हरिवाहन नाम का पुत्र हुआ था। वह अनन्तानुबन्धी मान के उदय से हड्डियों के समान (कठोर) मान को धारण करता था; अत: माता-पिता का विनय भी नहीं करता था, इस कारण उसे तिर्यंच आयु का बन्ध हो गया था। एक दिन वह माता-पिता की नहीं मानकर दौड़ता हुआ जा रहा था कि पत्थर से टकराने से सिर फट गया और आर्त्तध्यान करके यह सूअर हुआ है।

हे राजन! यह बन्दर पूर्व भव में धन्युधर नामक नगर में कुबेर नामक वनिक की सुदत्ता नाम की स्त्री से नागदत्त नाम का पुत्र हुआ था। वह अनन्तानुबन्धी माया को धारण करता था। एक दिन उसकी माता नागदत्त की छोटी बहिन के विवाह के लिए अपनी दुकान में से इच्छानुसार चुन-चुनकर कुछ सामान ले रही थी। नागदत्त उसे छकाना चाहता था परन्तु किस प्रकार छकाना चाहिए - इसका उपाय वह नहीं जानता था। अत: इसी उलझन में अचानक आर्तध्यान से मरकर तिर्यंच आयु के बन्ध से यह बन्दर हुआ है।

हे राजन! नेवला भी पूर्व भव में इसी सुप्रतिष्ठित नगर में लोलुप नाम का हलवाई था। वह धन का अत्यन्त लोभी था। किसी समय वहाँ का राजा जिनमन्दिर बना रहा था और उसके लिए मजदूरों से ईंटें मँगवाता था। वह लोभी मूर्ख हलवाई, मजदूरों को कुछ खाने को देकर उनके पास से चुपचाप थोड़ी ईंटें अपने घर में डलवा देता था। ये ईंटें तोड़ने पर उनमें से सोना निकला। यह देखकर उसका लोभ बहुत बढ़ गया। वह सुवर्ण के लोभवश बारम्बार मजदूरों को खाने के लिए कुछ देकर ईंटें अपने घर में डलवाने लगा। एक दिन उसको अपनी पुत्री के गाँव जाना पड़ा। वह जाते समय अपने पुत्र से कहता गया कि हे पुत्र! तू भी मजदूरों को कुछ खाने को देकर ईंटें घर में रखवा लेना - ऐसा कहकर वह तो चला गया परन्तु उसके पुत्र ने उसके कहे अनुसार ईंटें घर में नहीं रखवाई। जब वह वापस आया और उसे यह ज्ञात हुआ तो उसने लकड़ी और पत्थरों से अपने पुत्र को मार दिया, और उसके दु:ख से दु:खी होकर क्रोध से अपना पैर भी काट दिया। अन्त में वह राजा द्वारा मारा गया और यहाँ यह नेवला हुआ है।

हे राजन! तुम्हारे आहारदान को देखकर ये चारों अत्यन्त हर्षित हुए हैं और इनको जातिस्मरण ज्ञान हो गया है - इस कारण ये संसार से विरक्त हो गये हैं। तुम्हारे द्वारा दिये गये आहारदान की अनुमोदना करने से इन सबने उत्तम भोगभूमि की आयु का बन्ध कर लिया है। इसी कारण भय छोड़कर धर्म सुनने की इच्छा से यहाँ बैठे हुए हैं।

हे नरश्रेष्ठ! इस भव से आठवें भव में तुम ऋषभदेव तीर्थंकर भगवान होकर मोक्ष प्राप्त करोगे और उसी भव में ये सब भी सिद्ध होंगे - इसमें कोई सन्देह नहीं है और वहाँ तक ये पुण्यशाली जीव तुम्हारे साथ ही देव और मनुष्यों के उत्तम-उत्तम सुख का अनुभव करते रहेंगे। यह श्रीमती का जीव भी तुम्हारे तीर्थ में दानतीर्थ की प्रवृत्ति चलानेवाला श्रेयांस राजा होगा और उस भव में तुम्हारा गणधर होकर उत्कृष्ट कल्याण अर्थात् मोक्ष प्राप्त करेगा - ऐसा नि:सन्देह जान।

इस प्रकार चारणऋद्धिधारी मुनिराज के वचन सुनकर राजा वज्रजंघ का शरीर हर्ष से रोमांचित हो गया और ऐसा लगता था कि मानों प्रेम के अंकुरों से व्याप्त ही हो गया हो। तत्पश्चात् राजा वज्रजंघ, रानी श्रीमती तथा सिंह, बन्दर, नेवला और सुअर मृत्यु हो प्राप्त करके भोगभूमि में उत्पन्न हुए।

(पापभावों से तिर्यंच हुए जीव, मुनिराज के आहारदान की मात्र हर्ष से अनुमोदना करने से पुण्यबन्ध करके भोगभूमि में उत्पन्न होते हैं और वहाँ सम्यग्दर्शन प्राप्त करके श्री ऋषभदेव के जीव के साथ-साथ आठ भवों तक रहकर गणधरादि होकर मोक्ष प्राप्त करते हैं। परम पूज्य गुरुदेवश्री जो फरमाते हैं कि कल का भारवाहक आज मोक्ष प्राप्त करता है - यह द्रव्यस्वभाव की अचिन्त्यता ऐसे समझ सकते हैं।)

- महापुराण में से संक्षिप्त सार

वैराग्य समाचार

कोलकाता : पूज्य गुरुदेवश्री के अनन्य भक्त एवं स्वर्गीय बाल ब्रह्मचारी चन्दुभाई झोबालिया के भ्राता श्री मूलचन्दभाई झोबालिया का तीर्थधाम स्वर्णपुरी सोनगढ़ में शान्तपरिणामों से देह परिवर्तन हुआ है। आप पूज्य गुरुदेवश्री के प्राचीन अनुयायी एवं गहरी तत्त्वरुचि सम्पन्न आत्मार्थी मुमुक्षु थे। कोलाकाता में आयोजित पञ्च कल्याणक प्रतिष्ठा महोत्सव के अवसर पर भगवान के माता-पिता बनने का सौभाग्य आपको प्राप्त हुआ था।

दिल्ली : लाला रहतूमल जैन का शान्त परिणामों से देह परिवर्तन हुआ है। सोनागिर में निर्मित धार्मिक संकुल के निर्माण में आपका महत्त्वपूर्ण योगदान रहा है। तीर्थधाम मङ्गलायतन के प्रति भी आपको विशेष अनुराग था।

खैरागढ़ : श्रीमती धूड़ीबाई गिड़िया का शान्त परिणामों से देह परिवर्तन हुआ है। आप श्रीमान् दुलिचन्द, पन्नालाल, मोतीलाल, प्रेमचन्द गिड़िया की माताजी थीं।

तीर्थधाम मङ्गलायतन परिवार इष्टवियोग की इस विषम परिस्थिति में आपके परिजनों के प्रति संवेदना व्यक्त करते हुए दिवंगत आत्मा के अभ्युदय की मंगल कामना करता है।

समाचार-सार

पञ्च कल्याणक पत्रिका विमोचन समारोह

भीलवाड़ा : नवनिर्मित श्री सीमन्धर जिनालय के आगामी 24 से 30 दिसम्बर तक आयोजित पञ्च कल्याणक प्रतिष्ठा महोत्सव की पत्रिका का भव्य विमोचन समारोह श्री सीन्धर जिनालय परिसर में अनेक साधर्मियों की उपस्थिति में दिनांक 17 नवम्बर 2012 को सानन्द सम्पन्न हुआ। इस कार्यक्रम की अध्यक्षता श्री निहालचन्द जैन ओसवाल पीतल फैक्ट्री ने की और मुख्य अतिथि के रूप में श्री मुकेश जैन, ढाई द्वीप जिनायतन इन्दौर मञ्चासीन थे। इनके अतिरिक्त पञ्च कल्याणक प्रतिष्ठा महोत्सव के प्रमुख पात्र माता-पिता, यज्ञनायक, सौधर्म एवं ईशान इन्द्र आदि भी मंच की शोभा बढ़ा रहे थे। कार्यक्रम का सञ्चालन पण्डित संजय जैन शास्त्री, मङ्गलायतन ने किया। पञ्च कल्याणक सम्बन्धी उद्‌बोधन देवेन्द्रकुमार जैन ने प्रदान किया। सर्व प्रथम अष्ट देवियों ने मङ्गल गान प्रस्तुत कर कार्यक्रम का शुभारम्भ किया। तत्पश्चात् पञ्च कल्याणक के प्रमुख पात्रों - इन्द्र-इन्द्राणी, राजा-रानी इत्यादि का मेवाड़ की परम्परा के अनुरूप स्थानीय समाज द्वारा भव्य स्वागत किया गया। पञ्च कल्याणक की पत्रिका का भव्य विमोचन श्री मुकेश जैन, इन्दौर ने किया। सम्पूर्ण नगर में पञ्च कल्याणक के प्रति उत्साहपूर्ण वातावरण देखा गया।

अष्टाह्निका महापर्व पर व्याख्यान माला

तीर्थधाम मङ्गलायतन : कार्तिक माह की अष्टाह्निका महापर्व के पावन अवसर पर आध्यात्मिक व्याख्यानमाला का विशेष आयोजन किया गया। प्रतिदिन जिनेन्द्र पूजन के अतिरिक्त पूज्य गुरुदेवश्री के प्रवचनसार ग्रन्थ पर सी.डी. प्रवचन, एवं जयपुर से पधारीं बाल ब्रह्मचारिणी कल्पनाबेन द्वारा न्यायदीपिका एवं मोक्षमार्ग प्रकाशक के आधार पर विशेष व्याख्यान आयोजित हुए। जिसका लाभ समागत अतिथियों के साथ-साथ मङ्गलार्थी छात्रों ने प्राप्त किया। विदित हो कि बाल ब्रह्मचारिणी कल्पनाबेन द्वारा व्याख्यानमाला का क्रम अभी भी चल रहा है।

कहान क्रमबद्ध कथा भाग-2 का ऐतिहासिक लोकार्पण

तीर्थराज सम्मेदशिखर : श्री कुन्दकुन्द कहान दिगम्बर जैन तीर्थ सुरक्षा ट्रस्ट मुम्बई द्वारा सम्मेदशिखर में निर्मित संकुल श्री कुन्दकुन्द कहान नगर में आयोजित

श्री पार्श्वनाथ दिगम्बर जिनबिम्ब पञ्च कल्याणक प्रतिष्ठा महोत्सव के पावन अवसर पर श्री कुन्दकुन्द कहान पारमार्थिक ट्रस्ट मुम्बई द्वारा प्रस्तुत कहान क्रमबद्ध कथा, भाग-2 (गुजराती) का ऐतिहासिक विमोचन श्री पवन जैन, अलीगढ़ द्वारा किया गया। इस अवसर पर श्री पवन जैन ने अपने उद्‌गार व्यक्त करते हुए कहा कि - पूज्य गुरुदेवश्री ने हमें सनातन सत्य दिगम्बर जैनधर्म के रहस्य समझाये हैं और सच्चे देव-गुरु-शास्त्र का स्वरूप स्पष्ट किया है। गुरुदेवश्री पर सदा ही मुनि विरोधी होने के आरोप लगाये जाते रहे हैं, किन्तु सच्चाई यह है कि पूज्य गुरुदेवश्री ही वास्तव में मुनिराजों के अनन्य उपासक हैं और उन्होंने ही हमें मुनिधर्म का सच्चा स्वरूप समझाया है। उन्हीं के प्रेरणा से प्रेरित होकर तीर्थधाम मङ्गलायतन में धन्य मुनिदशा प्रकल्प का निर्माण किया गया है। जो आज सम्पूर्ण विश्व में दिगम्बरत्व की गौरव गाथा का यशोगान कर रहा है। पूज्य गुरुदेवश्री के समग्र जीवन को आगामी पीढ़ियों तक पहुँचाने के उद्देश्य से बाल ब्रह्मचारी हेमन्तभाई गाँधी द्वारा जो कहान क्रमबद्ध कथा का विशेष उपक्रम किया गया है इससे हमें गुरुदेवश्री के जीवन-दर्शन को समझने का अवसर प्राप्त होगा।

इसके साथ ही पूज्य गुरुदेवश्री के नवीन उपलब्ध तीन सौ ग्यारह प्रवचनों की डी.वी.डी. का भी विमोचन किया गया। विदित हो कि कहान क्रमबद्ध कथा भाग-2, चार डी.वी.डी. में बारह घण्टों की रिकार्डिंग है जिसका हिन्दी संस्करण भी अति शीघ्र उपलब्ध हो सकेगा।

गुरुदेवश्री के समाधि-दिवस पर विशेष आयोजन

तीर्थधाम मङ्गलायतन : अध्यात्मयुगस्रष्टा पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी के वार्षिक समाधि-दिवस के वैराग्य प्रसङ्ग पर विशेष आयोजन वैराग्यपूर्ण वातावरण में किया गया। इस अवसर पर जिनमन्दिर में विशेष पूजन का आयोजन रखा गया। साथ ही वीडियो प्रवचन के माध्यम से पूज्य गुरुदेव के साक्षात् दर्शनों का सौभाग्य प्राप्त हुआ। गुरुदेवश्री के व्यक्तित्व एवं कर्तृत्व को समझने के पावन उद्देश्य से एक विचार गोष्ठी का आयोजन किया गया। जिसमें मङ्गलार्थी छात्रों द्वारा गुरुदेवश्री के जीवन के विविध पहलुओं को उजागर किया गया। साथ ही बाल ब्रह्मचारिणी कल्पनाबेन, श्री पवन जैन, पण्डित अशोक लुहाड़िया, पण्डित देवेन्द्रकुमार जैन, पण्डित संजय शास्त्री, पण्डित सुधीर शास्त्री इत्यादि ने उनके जीवन प्रकाश डाला।

इस अवसर पर प्रत्येक मङ्गलार्थी छात्र को जीवन में पूज्य गुरुदेवश्री के सी.डी. प्रवचन नियमित सुनने की प्रेरणा प्रदान की गयी।

शाश्वत् तीर्थ सम्मेदशिखर में प्रतिष्ठा महोत्सव

सम्मेदशिखरजी : अनन्तानन्त जीवों की मुक्तिस्थली शाश्वत् तीर्थराज सम्मेदशिखर में श्री कुन्दकुन्द कहान दिगम्बर जैन तीर्थ सुरक्षा ट्रस्ट द्वारा संस्थापित श्री कुन्दकुन्द कहान नगर में निर्मित पार्श्वनाथ जिनालय में प्रतिष्ठित होनेवाले वीतरागभाववाही जिनबिम्बों का श्री पार्श्वनाथ पञ्च कल्याणक प्रतिष्ठा महोत्सव 24 से 30 नवम्बर तक सम्पूर्ण देश-विदेश के हजारों साधर्मियों, श्रेष्ठियों एवं विद्वानों की उपस्थिति में सानन्द सम्पन्न हुआ। पूज्य गुरुदेवश्री के स्वप्न का साकाररूप यह पञ्च कल्याणक जहाँ सम्पूर्ण मुमुक्षु समाज की एकजुटता का परिचय प्रदान कर रहा था, वहीं मुमुक्षु समाज की समस्त धार्मिक संस्थाओं को एक मंच पर उपस्थित होने का गौरव प्रदान कर रहा था।

प्रतिष्ठा महोत्सव का ध्वजारोहण श्री रसिकलाल माणिकचन्द धारीवाल परिवार द्वारा किया गया। प्रतिष्ठा महोत्सव की सम्पूर्ण विधि बाल ब्रह्मचारी जतिशचन्द्र शास्त्री ने अपने सहयोगियों के साथ सम्पन्न करायी। इस अवसर पर पूज्य गुरुदेवश्री के माङ्गलिक सी.डी. प्रवचनों का लाभ तो समस्त साधर्मीजनों ने प्राप्त किया ही साथ ही ख्याति प्राप्त विद्वान् डा. हुकमचन्द भारिल्ल, पण्डित विमलदादा झांझरी, उज्जैन; पण्डित ज्ञानचन्द जैन सोनागिर; बाल ब्रह्मचारी हेमन्तभाई गाँधी, सोनगढ़; डॉ. उत्तमचन्द जैन, छिन्दवाड़ा; पण्डित वीरेन्द्र जैन, आगरा; बाल ब्रह्मचारी सुमतप्रकाश जैन, खनियांधाना; पण्डित राजकुमार शास्त्री, ध्रुवधाम; पण्डित शैलेषभाई तलोद; पण्डित रजनीभाई दोशी इत्यादि विद्वानों के प्रासंगिक स्वाध्याय का लाभ प्राप्त हुआ। मंच के समस्त कार्यक्रम पण्डित अभयकुमार जैन शास्त्री ने सफलतापूर्वक संचालित किये। तीर्थधाम मङ्गलायतन से श्री पवन जैन, श्री अजितप्रसाद जैन, दिल्ली; डॉ. किरीटभाई गोसलिया, अमेरिका; पण्डित अशोक लुहाड़िया, पण्डित संजय जैन शास्त्री, श्री स्वप्निल जैन आदि कार्यक्रम में उपस्थित हुए।

इस अवसर पर सम्पूर्ण देश के साधर्मियों का पारस्परिक मिलन तो हुआ ही शाश्वत् तीर्थधाम में मुमुक्षु समाज द्वारा निर्मित इस संकुल से भविष्य में पूज्य गुरुदेवश्री द्वारा प्रवाहित आध्यात्मिक तत्त्वज्ञान का प्रचार-प्रसार भी इस भूमि से होगा, इस बात की सभी को प्रसन्नता थी। सम्पूर्ण कार्यक्रम को सफल बनाने में श्री कुन्दकुन्द कहान ट्रस्ट के अतिरिक्त कलकत्ता मुमुक्षु मण्डल, श्री अजित जैन बड़ौदरा इत्यादि का विशेष योगदान रहा। विस्तृत सचित्र समाचार मङ्गलायतन टाइम्स में प्रकाशित किये जा रहे हैं।